Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Double Blind Peer Reviewed)
Vol. 6 No. 1-2, March-Sep. 2015
ISSN : 0976-0237

सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का वैदिक समाधान

विरेन्द्र कुमार*

भारत राष्ट्र के प्राचीन इतिहास दृष्टिपात किया जाए तो हमें ज्ञात होता है भारत वह राष्ट्र है जिसने अपने ज्ञान के आलोक से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया। तत्कालीन भारतीय मनीषियों ने जिन समाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक मान्यताओं की परिकल्पना की थी आज भी उन आदर्शों की उतनी ही प्रासंगिकता है, जितनी उस समय में थी। आज समाज में साम्प्रदायिकता, क्षेत्रावाद, जातिवाद, आतंकवाद, भ्रष्टाचार जैसी अनेक ऐसी बुराइयाँ है, जिनके कारण व्यक्ति संकीर्ण मानसिकता का शिकार होकर स्वं और राष्ट्र को क्षति पहुँचा रहा है। ये बुराइयाँ व्यक्ति को निराशा के अन्धकार में डाल कर उत्कर्ष का मार्ग अवरूद्ध कर रही हैं।

वेद भारत के प्राचीन अमूल्य निधि है। यदि वेदोक्त मार्ग का अनुसरण किया जाए तो इन सभी उपर्युक्त बुराइयों से निवृत्ति पाकर मानव उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि हमें वेदोक्त मार्ग पर चलना चाहिए।[1] महर्षि मनु इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि हमें क्यों वेदोक्त मार्ग अपनाना चाहिए।

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धति।[2]
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स।[3]

अर्थात् वेद त्रिकालिक ;भूत, वर्तमान और भविष्यद्ध ज्ञान के आधर है और वेद ही सर्वज्ञान कोष है यहाँ सभी करणीय कर्मों का उल्लेख है। आज समाज में साम्प्रदायिकता का इतना अधिक उग्र रूप देखने को मिलता है कि मानव अपने मानवता रूपी धर्म को त्याग कर अनेक सम्प्रदायों में बंट गया है, कुछ क्षेत्रवाद के नाम पर परस्पर भेदभाव करते हैं। इस प्रकार क्षेत्रवाद और सम्प्रदायिकता जैसे अनेक संकीर्ण विचारों से ग्रस्त विवेकशून्य मानव घोर अन्धकार में डूबा हुआ है। वेद हमें इस अन्धकार से निकालते हुए साम्प्रदायिकता आदि को त्याग कर मानव बनने का उपदेश देते हैं। वेद कहता है कि तू मानव बन और दिव्य मानवों के निर्माण में अपना जीवन व्यतीत कर।

मनुर्भव जनया दैव्य जनम्[4]

विश्वबन्धुत्व और भाईचारे का सन्देश देते हुए वेद का यह संदेश है **''पुमान्पुमासं परिपातु विश्वतः''**[5] अर्थात् मानव मानव की सभी तरह से रक्षा करे। सृष्टि में सभी मानव सहृदय बने, अपने समान ही सब के सुख अभिलाषी हो और सबके हृदय वैर–विरोध घृणा आदि दुर्भावों से मुक्त हों, जैसे गाय स्नेह और वात्सल्य से अपने बछड़े का पालन पोषण करती है वैसे ही सभी

*Asst. Prof, Sanskrit Department, Punjabi University, Patiala

Vol. 6 No. 1-2, March-Sep. 2015
ISSN : 0976-0237

मानवों के हृदय में परस्पर प्रेम भाव बड़े।[6] वेद ने समृद्ध और सज्जन पुरूषों को असहाय और पतित लोगों को भी अपने साथ लेकर चलने का उपदेश दिया है–

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।।[7]

अर्थात् हे सज्जन पुरुषो! नीचे गिरे हुए लोगों को उपर उठाओ, पतित व्यक्तियों को बार–बार उठाओ, अपराध और पाप करने वाले व्यक्ति को भी उपर उठाओ, बार–बार उठने का प्रयास करते हुए उनकी इषित आत्मा को पवित्र करो।

वेदों में बार बार मनुष्य को मनुष्य बनने, सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करने और सबका उत्कर्ष करने की बात कही गई है यथा–**'सर्वा आशा मम मित्रां भवन्तु'**[8];सब दिशाओं में परस्पर स्नेह भाव मित्र हों। **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**[9]; सम्पूर्ण विश्व आर्य श्रेष्ठ सज्जन मानव बने। **'अप नः शोशुचदघम्'**[10];पाप भावनाएँ हमसे सदा दूर रहें।

समाज या राष्ट्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, पारस्परिक वैमनस्य, अविश्वास, अश्रद्धा, छल–कपट, अशान्ति आदि दुर्भावनाओं का उद्भव मानव की स्वार्थपरायण नीति के कारण होता है। मनुष्य अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर सार्वजनिक और सर्वहितकारी भावनाओं को त्याग देते हैं जिसके फलस्वरूप राष्ट्र में उपर्युक्त दुर्भावनाएं पनपती है, जो राष्ट्र और व्यक्ति के विकास की विरोधी है। इसलिए समाज के उत्थान हेतु वहाँ के मनुष्यों का चरित्रवान् होना आवश्यक है क्योंकि–**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**[11] अर्थात् चरित्रहीन व्यक्ति को ज्ञान भी पवित्र नहीं करता। ज्ञान भी सदाचार के बिना निष्फल है। इसलिए वेद उत्कृष्ट चरित्र वाले मनुष्यों के निर्माण का सन्देश देता है–**''चरित्रांस्ते शुन्धमि''**[12] महाभारत में भी चरित्र के महत्व प्रतिपादित करते हुए व्यास ने लिखा है–

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः[13]

अर्थात् व्यक्ति को प्रयत्न पूर्वक चरित्र की रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता जाता रहता है। धन के नाश होने पर व्यक्ति नष्ट नहीं होता परन्तु चरित्र के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति को नष्ट होने से कोई बचा नहीं सकता अर्थात् चरित्रहीन व्यक्ति नष्ट हो जाता है। इसलिए चरित्र को दूषित करने वाली दुर्वृत्तियों को दूर करने का उपदेश वेद हमें देता है–

पराऽपेहि पतस्पाप मिशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर।
गृहेषु गोषु में मनः[14]

अर्थात् हे मेरे मन की पाप भावना! तू दूर जा! मैं निन्दनीय कर्म की प्रवृत्ति तेरे कहने से भी अपने अन्दर नहीं रखूँगा। मैं तुझे नहीं चाहता। तू वृक्षों वनो में विचरण कर। मैं अपने मन को घर की समृद्धि में और गौओं की सेवा में लगाऊँगा।

वर्तमान युग में जातिवाद एक और दूसरी समस्या जो राष्ट्र के उन्नति के मार्ग का सबसे बडा अवरोधक है। क्योंकि जब तक समाज के सभी वर्ग मिलकर राष्ट्रोत्थान के लिए प्रगतिशील

Vol. 6 No. 1-2, March-Sep. 2015
ISSN : 0976-0237

नहीं होंगे तब कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। कुछ मूर्ख लोग वेदों को ही जातिवाद से ग्रस्त मानते हैं परन्तु मूढधी वेदार्थ को सही रूप से नहीं समझते। वे प्रस्तुत मन्त्र को जातिवाद के उदाहरण के रूप में उपस्थपित करते हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहुभ्यो राजन्यो कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्य पदभ्यां शुद्रोऽजायत।।[15]

परन्तु वेद में वर्णों का विभाग किया गया है न कि जाति का। किसी भी राष्ट्र में रहने वाले जन–समाज को इन चार वर्गों के रहने से ही अभ्युदय हो सकता है। जैसे मानव शरीर में मुख, हाथ, पेट व पैर होते हैं जैसे ही मनुष्य समाज भी ये उपर्युक्त अर्घें होते हैं और इन्हें ही वर्ण की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार शरीर मुख भुजा आदि एक दूसरे से घृणा न करते हुए परस्पर मिलकर रहते हैं और एक दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझते है। यही अवस्था समाज शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की होनी चाहिए। उनमें परस्पर किसी प्रकार की घृणा नहीं होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में एक ओर बात विशेष रूप ध्यातव्य है कि इन चार वर्णों का विभाग प्रायशः मनुष्य की मनोवृत्ति के अनुरूप ही होता है। वेद का यह मन्त्र इस बात की पुष्टि करता है–

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्व महीया इष्टये त्वमर्थामिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा।।[16]

अर्थात् एक को बल और राष्ट्र सम्बन्धी यश के लिए, एक को बड़े बड़े यज्ञों धार्मिक अनुष्ठानों के लिए, एक को धन के लिए और एक चलने फिरने के लिए–इस प्रकार असमान स्वभाव वाले प्राणियों अपने अपने कर्मों में लगाने हेतु उषा ने सब लोकों को उगलकर अन्धकार से बाहर कर दिया।

मन्त्र का भाव यह है कि प्राणी स्वभाव से विसदृश होते हैं। स्वभाव की भिन्नता के कारण उनके कर्म भी भिन्न होते हैं। अतः वर्ण व्यवस्था को जाति से अभिप्रेत मानना नितान्त अनुचित है। इसके अतिरिक्त वेद में सभी वर्गों के कल्याण की बात कही गई है–

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत् शूद्रे उतार्ये [17]

अर्थात् आर्य अथवा शूद्र सभी के लिए प्रियदृष्टि होनी चाहिए। वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिाय, वैश्य और शूद्र सबके उत्कर्ष की कामना की गई है–

रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रूचं राजसु नस्कृधि।
रूचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रूचा रूचम।।[18]

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब में एक समान रूप से तेज का आधान करें। वेद स्पष्ट रूप में घोषणा करता है कि विश्व में कोई बड़ा छोटा नहीं है। समाज में सभी परस्पर भाई है अतः सौभाग्य विकास के लिए सभी मिलकर आगे बढ़ते है।[19]

अस्पृशता के विरोध में अधेलिखित अवलोकनीय है–

समानी प्रया सह वोऽन्नभागः।
समाने योक्त्रो सह वो युनज्मि।।[20]

Vol. 6 No. 1-2, March-Sep. 2015
ISSN : 0976-0237

अर्थात् हे मनुष्यों! तुम्हारे जल पीने के स्थान एक हो, तुम सब का अन्न सेवन एक स्थान पर हो, तुम सब परस्पर एक प्रेम पाश में बन्धे रहो। सबसे समान रूप से प्रेम करो।

वेद में सर्वत्र मानव निर्माण की उदात्त भावनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। यदि ऐसे सद्विचारो समाज में प्रचार व प्रसार किया जाए तो लोक कल्याण और विश्वबन्धुत्व की जो परिकल्पना प्राचीन ऋषियों ने की थी वह सार्थक हो सकती है और साम्प्रदायिकता जैसी व्याधियों का मूल नाश हो सकता है। जिस समाज में ऐसी उदात्त भावनाएं व्याप्त हो वहाँ जातिवाद और अस्पृशता जैसी बुराइयों का कोई स्थान नहीं रहता। आवश्यकता है तो केवल इन सद्विचारों को अपने जीवन में अपनाने की। यदि उपर्युक्त विचारों को मानव अच्छी प्रकार अपने जीवन में धारण करे तभी वेद की यह उक्ति सार्थक हो सकती है।

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुहासिति।।[21]

सन्दर्भ

1. संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि अथर्ववेद 1.1.4
2. मनुस्मृति 12.67
3. वही 2.7
4. ऋग्वेद 10.53.6
5. यजुर्वेद 29.51
6. अथर्ववेद 3.30.1
7. वही 4.13.1
8. वही 16.15.6
9. ऋग्वेद 6.63.5
10. अथर्ववेद 4.7.7
11. वसिष्ठस्मृति 6.3
12. यजुर्वेद 6.13
13. महाभारत 3.36.30
14. अथर्ववेद 6.45.1
15. ऋग्वेद 101.90.12
16. वही 1.113.6
17. अथर्ववेद 16.62.2
18. यजुर्वेद 18.48
19. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते। सं भ्रातरो वावृधुः सौभाग्य।। नं 5.60.5
20. अथर्ववेद 3.30.6
21. ऋग्वेद 10.162.4